Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 16, Issue No. 2, February-2019, ISSN 2230-7540

# विद्यापति का सौन्दर्य-दर्शन

**Bhawna Dahiya***

PGT in Hindi GGSSS Nuh Mewat

***शोध-आलेख सार: -*** *मानव अनादिकाल से सौन्दर्य का भावन-उद्भावन-अनुसन्धान करता आ रहा है। सौन्दर्य-सम्बन्धी यह भावन-संधान प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने ढंग, रूचि, संस्कार शक्ति एवं सीमा के अनुसार करता है। चाहे कोई सामान्य व्यक्ति हो, चाहे विशिष्ट-कवि हो अथवा कलाकार हो, सभी का पुरूषार्थ सौन्दर्य-साधन होता है। उसके जीवन या काव्य का प्रारम्भ और प्र्यवसान सौन्दर्य में ही अवस्थित है। हाँ, यह अवश्य है कि प्रत्येक कवि की सोन्दर्य-चेतना की विवृति नानाविध भावसंकुल, सांसारिक अनुभूतियों के माध्यम से होती है। ये अनुभूतियाँ ऐन्द्रिक हों या अतीन्द्रिक, शरीरी हों या अशरीरी (दिव्य) काव्य की प्रतिपाद्य होती है; क्योंकि भारतीय संस्कृति में भाव की अभयर्थना के साथ शरीर की अवहेलना का विधान नहीं है। भाव एवं शरीर दोनों को समसमान महत्तव मिला है। भारतीय मानीषी यह समझते थे कि 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्'- शरीर ही धर्मसाधना का साधन है, अतएव यह माननीय है।*

***मुख्य-शब्द:*** *सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक, भौगोलिक, मान्यताएँ, प्रख्यात, सौन्दर्य, प्रकृति।*

----------X----------

## भूमिका:

महाकवि विद्यापति सौन्दर्य के अनुपमेय स्रष्टा एवं द्रष्टा थे। विद्यापति की ऐसी प्रखर दृषिट का कारण तत्कालीन परिवेश को स्वीकारा जाता है। कारण स्पष्ट है। कि मानव में कवि सृष्टि का सार्वाधिक संवेदनशील प्राणी होता है। वह जग की जड़ता और चेतना से जाने-अनजाने प्रभावित होता रहता है और इन समस्त प्रभावकारी तत्त्वो को अपने व्यक्तित्व में अन्तपर्भूत कर उसे सर्वभूत बनाने का प्रयास करता है। यही उसकी सामाजिकता है। समाज में रहने का तात्पर्य वही होता है कि वह सामाजिक जीवन में परिव्याप्त जो सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक, भौगोलिक, साहित्यिक मूल्य, मान्यताएँ, विशेषताएँ एवं बिलक्षणताएँ है; उनसे अपनी दिशा और दृष्टि निर्मित करे। विद्यापति इसके अपवाद नहीं है। उनकी दृष्टि के निर्माण का सारा श्रेय मिथिला की धरती को ही है। मिथिला सोन्दर्य की प्रसवस्थली के रूप में चिरकाल से प्रख्यात रही है। सौन्दर्य को भी सुन्दर बनाने वाली सीता मथिलाकी ही तो थी! विद्यापति का सम्पूर्ण परिवेश प्रकृति की रमणीयता से आपूरित था तथा सौन्दर्य से सजग सन्नद्ध था। लेकिन दूसरी तरफ उनका राजनीतिक परिवेश (संवत् 800 से सं. 1400 तक) नाना प्रकार की विसंगतियों से भरा हुआ था। आचार्य शुक्ल इस काल की राजनीतिक अराजकता, सामाजिक दुव्यवस्था तथा धार्मिक अत्याचार का सचेत वर्णन करते हुए लिखते हैं कि देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठिता हो जाने पर हिन्दू जनता के हृदय में गौरव, गर्व और उत्साह के लिए वह स्थान न रह गया। उनके सामने ही उनके देवमन्दिर गिराये जाते थे, देवमूर्तियाँ तोड़ी जाती थीं और पूज्य पुरूषों का अपमान होता था और वे कुछ भी नहीं कर सकते थे। ऐसी स्थिति में अपनी वीरता के गीत न तो वे गा सकते थे और न लज्जित हुए बिना सुन ही सकते थे। आगे चलकर जब मुस्लिम साम्राज्य दूर तक स्थापित हो गया तब परस्पर लड़ने वाले स्वतन्त्र राज्य भी न रह गये। इतने भारी राजनीतिक उलट-फेर के पीछे हिन्दू जनसमुदाय पर बहुत दिनों तक उदासी छायी रही। अपने पोरूष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करूणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या।

## शोध-प्रविधिः

इस शोध-पत्र के लिए शोध सामग्री अधिकांश रूप में द्वितीयक स्रोतों से ग्रहण की गई हैं। इसमें ऐतिहासिक विश्लेषण व वर्णनात्मक दृष्टिकोण के साथ-साथ शोधकत्र्ता ने अपने व्यक्तिगत अनुभवों को भी स्थान दिया है। शोध सामग्री प्रसिद्ध पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं व समाचार पत्रों से प्राप्त की गई हैं।

www.ignited.in

आचार्य शुक्ल के उक्त कथन के प्रकाश में यदि विद्यापति के समय की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं साहित्यिक स्थिति पर विचार करें तो सहज ही यह ज्ञात हो जायेगा कि विद्यापति का समय नाना प्रकार की विषमताओं से आपूरित था। राजनीति निरी स्वार्थ की थी। सामाजिक स्थिति अति गरीबी और अति अमीरी से भरी-पूरी थी। सामान्य जन रात-दिन एक कर डालने पर भी पेट भरने में लाचार था जबकि दूसरे वर्ग श्रृग्डरिक प्रसाधनों तथा बनाव-ठनाव पर पैसे पानी की तरह फेंकता था। बालविवाह, सती-प्रथा, दास-प्रथा, जाति-वर्ण-भेद, सुरा-सुन्दरी का उन्मुक्त सेवन तथा लूट-खसोट से समाज त्राहि-त्राहि कर रहा था। जिनके पास पैसा था, उसी का मान-सम्मान था। काव्य को समझने वाला कोई नहीं था, इसलिए कविकुल धूम-धूमकर भिखारी हो गया। इन सारी विसंगतियों से कवि के मन को बहुत बड़ा धक्का लगा। ऐसाी संक्रमणकालीन कठोर स्थिति में विद्यापति जीना नहीं चाहते रहे होंगे, इसी नाते उनके परम सहृदय अन्तस् ने उन्हें सौन्दर्य के अभिराम लोक में ला पटका और जीवन की यथार्थता से काट दिया, लेकिन जीवन की मुख्य धारा से विद्यापति कटे नहीं। उनके साहित्य में पदे-पदे समाज की विसंगति की अभिव्यक्ति हुई है। 'कीर्तिलता' और 'कीर्तिपताका' तत्कालीन परिवेश का दस्तावेज हैं। हाँ, यह जरूर है कि विद्यापति ने अपने गीतों में सब कुछ भुलाने का उपक्रम करते हुए अपने तरल मन को बहाया हे, लेकिन उस तरलता के पीछे भी उनका अवसादयुक्त अन्तस् उच्छलित-विच्छलित हो रहा है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इसी नानाविधि भावविद्धता ने कवि को आनन्दनिस्स्यन्दक अपरूप् सौन्दर्य की सर्जना में समर्थ एवं कृतकार्य बनाया है।

कह रहा था कि विद्यापति के काव्य में भाव एवं देह, अमांसलता एवं मांसलता, अशरीरी एवं शरीरी-दोनों रूपों की समसमान रूप से अभ्यर्थना हुई है। निस्संदेह, विद्यापति देह की दीप्ति को दीपित करने में उत्यन्त दक्ष हैं। उनका यह रूप सर्वत्र अभिनव है। कवि के लिए यह रूप अपरूप बना हुआ है। उच्छल सहृदयों के लिए इसमें रूपभोग की ऐन्द्रिक सान्द्रता सन्निहित है और सर्वसुखाय आनन्द का रस-सिन्धु भी हिल्लोल करता प्रतीत हो रहा है। उक्त तथ्यों के सहारे विद्यापति के सौन्दर्य का दर्शन निम्नलिखित रूपों में किया जा सकता है-

(अ) रूप की 'अपरूपता'।

(आ) रूपभोग की ऐन्द्रिक सान्द्रता।

(इ) सौन्दर्य की नित्यनवता।

(ई) सौन्दर्य की आनन्दस्वरूपता।

(अ) रूप की 'अपरूपता'

मानव की दृष्टि सर्वप्रथम रूप् पर जाती है। रूत की रूचिरता, अपूर्वता, मुग्धता तथा मनोहरता ही नयनों के दर्शन का विषय बनता है। रूप की रमणीयता पर ही सहृदय के दर्शन का अस्तित्व आश्रित है। रूप जितना ही सघन सौन्दर्य वाला होगा, दर्शन की लालसा भी उतनी ही उत्कट, सान्द्र और प्रगाढ। सौन्दर्य रूप की ऊर्जा है और उसका अधिष्ठान आंगिक छवियाँ ही नहीं, वरन् आंगिक और आन्तरिक समस्त सौन्दर्य का संघात होता है। ऐसे सौन्दर्य का निर्माता सामान्य नहीं, अनन्य-विशिष्ट होता है। महाकवि विद्यापति सोन्दर्यपगे रूपदक्ष कलाकार थे। उनकी तृलिका दक्विपयों को उरेहने में पूर्ण समर्थ-सफल थी। इस अप्रतिम रूपस्रष्टा के द्वारा रूपित रूप की कोई रेखा कहीं भी धूमिल-मन्द नहीं होने पायी है। यह सभी बिन्दुओं की दृष्टि से सर्वत्र भास्वर बनी हुई है। अतएव, विद्यापति ने अपने ऐसे सौन्दर्य को यदि 'अपरूप' की अभिख्या प्रदान की, तो उसकी सार्थकता पर किसी प्रकार का सन्देह नहीं किया जा सकता है। कवि की दृष्टि में तथा कविकाव्य में बहुवर्णित तथा बहुआयामी इस अपरूप का क्या तात्पर्य है? स्पष्ट नहीं भासता। सामान्य रूप् से ठीकाकारों ने 'अपरूप' का अर्थ अपूर्व करके काम चला लिया है, लेकिन मेरे मत से यह अर्थ पर्याप्त नहीं है, क्योंकि विद्यापति ने इस शब्द का प्रयोग विशिष्ट अर्थ में किया है। कहने की आवश्यकता नहीं रह जाती है कि विद्यापति स्वयं में एक अपरूप कवि हैं, उनका विभाव अपरूप् है और विभाव का सौन्दर्य तो अपरूप है ही। विद्यापति सौन्दर्य को अपरूप कहते हैं तथा उस सौन्दर्य के सर्जक ब्रहमा को भी अपरूप् मानते हैं। कवि का अपरूप् रूप् (सौन्दर्य) प्राणों में पुलक, शरीर में रोमांच, मन में व्यग्रता तथा दर्शन में जिज्ञासा और लासा पैदा करता है।

चूँकि विद्यापति अपरूप के कवि हैं, अतएव उनकी दृष्टि भी अनुपम है। दृष्टि की इसी अनुपमता के कारण उन्होंने रूप को रचा। वह रूप चाहे अनुपमेय राधा का हो, चाहे कृष्ण का। विद्यापति की अपरूपता पर राधा की काया-छाया ही मँडराती है। राधा अखिल सौन्दर्य की विस्तीर्ण चित्रपटी है। यह समग्र भुवनों के सौन्दर्य का सारतत्त्व है। उस (राधा) नवला नारी का उद्भव ही कवि को अपरूप लगता है।1 विधाता द्वारा विनिर्मित राधा की ऐसी शोभा पर कवि को आश्चर्य होता है कि आखिर किस ब्रहमा ने इस सुषमामयी सुधामुखी बाला की रचना की है?2 उसके मुख की सृष्टि चन्द्रमा के सारतत्त्व को लेकर हुई है। उसके नेत्र चकित चकोर के सामान हैं। इसीलिए

www.ignited.in

कवि नायिका के रूप-स्वरूप वर्णन करने में लाचारी की अनुभूति कर रहा है। नयनों के लगाम को वह सम्भाल नहीं पाता, अतएव ये चंचल नेत्र उस अनिन्द्य रूपसी के साथ ही लगे रहते हैं।3 फलतः नयनों के प्याले से उसकी रूप-सुरा का आकण्ठ पान कर कवि मस्त और उन्मत्त हो जाता है तथा भाविविह्वल होकर सृष्टि के समस्त प्राणियों को अपरूप रूपस्रष्टा विधाता के द्वारा आकारित पृथ्वीतल के लावण्य के साररूप, राधारूप को निहारने के लिए प्ेररित करता है-

देख देख राधा रूप अपार।

अपरूव के बिहि आनि मिलाओल, खितितल लावनि सार।।

अंगहि अंग अनंग मुरछाएत, हेरए पड़ए अथीर।

मनमथ कोटि मथन करू जे जन, से हेरि महि-मधि गीर।।

कत-कतल खिमी चरन तल नेओछए, नांगिनि हेरी विभोरि।

करू अभिलाख मानहिं पद पंकज, अहनिसि कोर अगोरि।।4

राधा की प्रत्येक आंगिक छवि, उसकी प्रत्येक चित्ताकर्षी चेष्टा तथा उसका प्रत्येक क्रिया-व्यापार कवि के मन में अद्भुत कौतुक उत्पन्न करता है।5 अतएव कवि उसकी रूपसुधा-माधुरी के पान का लोभ न संवरण कर पाने के नाते विस्मयाविष्ट होकर बार-बार सराहता है। यमुना के फूल पर सखियों के साथ जलक्रीड़ा करने वाली राधिका की रूपछवि के वर्णन में कवि की रीझ-प्रीति देखते बनती है-

जमुना तीर युवति केलि कर

ऊठि उगल सानन्दा।

चिकुर सेमार हार अरूझाएल

जूथे जूथे उग चन्दा।।

मानिनि अपरूब तुअ निरमाने।6

पहले कहा जा चुका है कि राधा का रूप-व्यापार कवि के लिए सलोना एवं मनोरम है, इसीलिए तो रमणी रत्ना राधा का लावण्यमान आनन कवि को पूर्णिमा का इन्दु मालूम पड़ता है। और सहास्यवाणी अमृतवर्षा के समान प्रतीत होती है-

ननुडा-बदनि धनि वचन कहसि हँसि।

अमिया बरिखे जनु शरद पुनिम राशी।

अपरूप् रूप् रमनि-मनि।

याइत पेखलु गजराज गमनि धनि।

सिंरि जिनि माझा खिनि तनु अति कमलिनि।

कुच-छिरि फल भरे भाडिया पड़ये जानि।

काजरे र´जित बनि धवल नयन वर।

भ्रमर भुलल जनु विमल कमल पर।।

भनये विद्यापति सो वर नागर।

राई रूप हेरि गर गर अन्तर।।7

वास्तविकता तो यह है कि इस प्रकार के मनोज्ञ रूप को देखने के पश्चात् चाहे वे कृष्ण हों, या कोई सामान्य पुरूष; रसविदग्ध हो, या अविदग्ध; मुग्ध तो होगा ही और उस दर्शन से रसविभोर भी होगा, क्योंकि अपरूप रूप की यही मनोमयी परिणति होती है कि उस रूप के वैचित्र्य को देखकर सब कुछ विस्मृत कर दिया जाये।8

राधा (नारी) के ही सौन्दर्य में अपरूपता नहीं है, वरन् कृष्णा (पुरूष) भी अद्भुत सौन्दर्यशाली हैं। उनका रूप् भी कवि को अपरूप लगता है। उनमें भी स्वप्न-जैसी विस्मयाविष्टता की विद्यमानता है।9 कवि की कृष्ण के प्रति रूप-सम्बन्धी एवंविध धारणा उपयुक्त ही है, क्योंकि कृष्ण सामान्य सुन्दर नहीं हैं, उनमें रूप की दिव्यता दीपित होती है उनकी भी रचना ब्रह्मा ने मदन-भाण्डार को रिक्त करके की है-

कि कहब हे सखि कानुक रूप

के पतिआयब सपन सरूप।।

अभिनव सुन्दर जलघर देह।

पीत बसन पए सौदामिनी रहे।।

सामर झामर कुटिलहिं केस।

काजरे साजल मदन सुबेस।।

विद्यापति कह को कहब आर।

सून करल बिहि मदन भंडार।।10

विद्यापति सौन्दर्य के सिद्ध कवि हैं और उनका सब कुछ अपरूप है। विद्यापति का अपरूप पार्थिव सौन्दर्य सौन्दर्य से ऊपर की वस्तु है। विद्यापति उस अपरूप को अपना ईश्वर मानते हैं, अपनी सिद्धि मानते हैं। वे इस अपरूप के सामने समर्पण नहीं करते, बल्कि इसे जानने की निरन्तर अतृप्त इच्छा से चलते रहते है। उनकी सौन्दर्य-कल्पना न तो बिहारी आदि की तरह थकती है और न ही सूर की तरह समर्पण कर देती है। विद्यापति राधा और कृष्ण के सौन्दर्य की अतिशयता को अनिर्वचनीय कहकर उस पर सूर की तरह बलि-बलि नहीं जाते, बल्कि इस सौंदर्य को निरन्तर माना रूपों में निरखते रहने की इच्छा से ही इसकी अर्चना करते हैं।11

**(आ) रूपभोग की ऐन्द्रिक सान्द्रता**

मनोविश्लेषणात्मक पृष्ठभूमि में, रूप् या किसी वस्तु के सम्बन्ध में यह एक सामान्य-सी धारणा है कि जिस रूप (दृश्य) को हमने देखा नहीं है, उसे देखने के लिए हमारे अन्तस् में लालसा उफान मारती है तथा जिस रूप को हमने देख लिया है। उसे प्राप्त करने के लिए उत्कट व्यग्रता होती है। कहने का आशय यही है कि रूप पहले दृष्टि का विषय बनता है, तदनन्तर भोग का। दृश्य की परिणति एक न एक दिन भोग में अवश्य होती है। चूँकि विद्यापति सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूपों के नियामक कान्त कलाकार थे, अतएवं उनके काव्य में इस प्रकार के समस्त रूप-प्रतिरूपों का सचेत समाहरण हुआ है। अप्रतिम रूपशिल्पी विद्यापति रूपभोग के अनन्य कवि हैं। उनके काव्य में इनमें सम्बन्धित नाना रूपों का प्रतिफलन हुआ है। कवि की समस्त अपरूप रूपों की प्रस्तुति की अभिलाषा भोग ही है। पहले (रूप की 'अपरूपता' में) यह स्पष्ट हो गया है कि विद्यापति के द्वारा सुरेखित समस्त रूप अप्रतिम हैं। वे अनन्य सुन्दर हैं, इसीलिए तो दर्शन की प्रथम छटा में ही राधा-कृष्ण, दोनों एक-दूसरे को भावित करते हुए स्वयं भी भावविभोर हो जाते हैं-

पथ-गति मिल राधा कान।

दुहु मन मनसिज पूरज संधान।।

दुहु मुख हेरइत दुहु भेज भोर।।

समय न बूझए अचतुर चोर।।

बिदगधि संगिनी सब रस जान।

कुटिल नयन कएलन्हि समधान।।

चलल राजपथ दुहु उरझाईं।

कह कबि-सेखर दुहु चतुराई।।12

इस प्रथम मिलन के बाद नायिका (राधा) के पूर्वदृष्ट रूप के भोग के लिए नायक (कृष्ण) अतिशय व्यग्र रहने लगता है। उसके उस रूप का अनुस्मरण13 कर चिन्तित होता है-

अलखित हये हेरि बिहुसलि थोर।

जनि रयनी भेल चाँद इँजोर।।

कुटिल कटाख लाट पड़ि गेल।।

मधुकर-डम्बर लेल।।

काहिक सुन्दरि के ताहि जान।

आकुल कए गेल हमार परान।।14

'आकुल कए गेल हमार परान' पंक्ति से भोग की सान्द्र भावना की विवृति हो रही है। नायिका के 'चरण-जावक' नायक के हृदय में पावक पैदा करते हैं-योग के लिए नहीं, भोग के लिए-

चरन जावक हृदय पावक

दहए सब अंग मोर।।15

कविवर विद्यापति अपरूप सौन्दर्य के दर्शन के बाद उस रूप् को भोगने की लालसा व्यक्त करने वाले सफल कवि हैं। उनके काव्य में ऐन्द्रिक रूपों का गहन गुम्फन मिलता है। विषय की पुष्टि के लिए कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

राधा बड़ी मानिनी है। कृष्ण येन-केन-प्रकारेण उसके मान को समाप्त करते है। अब जब मान नहीं, तो मिलन में बाधा नहीं। वे पे्रमी युगल बिना किसी रोक-टोक के मिलना प्रारम्भ कर देते हैं। वहाँ पर भी कृष्ण पहुँचे रहते हैं। उस स्थल पर भी विदग्ध विलास होता है। नायिका अपनी अन्तरंग रखी से इस भाव का वर्णन करती हुर्द कहती है कि हे सखी! आज कृष्ण के साथ जो विदग्ध विलास हुआ, उसका अनुस्मरण कर मेरे अन्तस् में जिस अनुभूति-अरूणिमा का आविर्भाव हो रहा है, उसका वर्णन कर पाना मेरे लिए मुश्किल है-

आजुक लाज तोहे कि कहब माई। जल देई धोइ जादि तबहु न जाई।।

नहाइ उठल हम कालिंदी तीर। अंगहि लागल पातल चीर।।

तैं बेकत भेल सकल सरीर। तहि उपनीत समुख जदुबीर।।

बिपुल नितम्ब अति बेकत भेल। पालटि तापर कुंतल देल।।

उरज उपर जब देहल दीठ। उर मोरि बैसल हरि करि पीठ।।

हँसि मुख मोड़ए ढीठ कन्हाई। तनु तनु झापइते झांपल न जाई।।16

रूपभोग के अन्यान्य रूपों के ही अन्तर्गत कृष्ण राधा की श्रृंगार-सज्जा भी करते हैं।17 ये समस्त कार्य-व्यापार प्रेम-विभोरता की पराकाष्ठा के परिचायक हैं।

उपर्युक्त विश्लेषण के उपरान्त कहा जा सकता है कि विद्यापति रूपभोग के उन्मत्त कवि के रूपभोग से सम्बन्धित समस्त वर्णन ऐन्द्रिक हैं, मांसल हैं, शरीरी हैं। विद्यापति के अधिकांश गीत मांसलता का प्रतिफलन होकर सहृदय का मन मोहते हैं।

**(इ) सौन्दर्य की नित्यनवता**

नूतन-चिरनूतन, चिरनवीन सौन्दर्य का सार है, जहाँ मानव-मन सहज ही रमता है, श्रान्त-क्लान्त नहीं होता।18 मानव-मन अविराम भाव से नित्यनवता का आराधक रहा है। जहाँ पर भी नवीनता दिखलाई पड़ी, उसी तरफ वह खिंच गया। पुरातनता की ओर स्थिर रूप या वस्तु की ओर वह पल मात्र भी रहना-निखरना नहीं चाहता है। प्रकृति की भी ऐसी ही ईहा है। प्रसाद जी ने बिलकुल ठीक ही कहा था कि-

पुरातनता का यह निर्मोक

सहन करती न प्रकृति पल एक।

नित्य नूतनता का सानन्द

किये है परिवर्तन में टेक।।19

गतिशीलता, परिवर्तनशीलता, अस्थिरता ही जीवन है। जहाँ भी नवता की अबाध धारा बाधित हुई याकि प्रवाह ही कुछ समय के लिए शान्त हो गया, तुरन्त अनेक प्रकार की दूषणता उससे लिपट जाती है। सारा सौन्दर्य विनष्ट हो जाता है। जो सौन्दर्य गत्वरता में है, बहाव में है; वह स्थिरता में, रूकाव में नहीं है। उसमें दूषणता के साथ कुरूपता आ जाती है। क्षण-क्षण नूतनता को प्राप्त होने वाला रूप ही तो सौन्दर्य कहलाता है। इस सन्दर्भ में, महाकवि माघ ने बहुत ही बढ़िया बात कही थी-

'क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः।

सन्दर अस्थिरता-नवीनता की पूर्ण विद्यमानता का प्रतिबिम्ब है, जो उपयुक्त परिवर्तन प्रकट करता है। मैथिल कोकिल विद्यापति नवीनता के कवि हैं। वे भी प्रकृति की ही तरह पुरातनता के आवरण को पल मात्र भी सहन नहीं कर पाते हैं। कवि का व्यक्तित्व जिस प्रकार से स्वच्छन्द और रोमाण्टिक है, उसी प्रकार उनकी सौन्दर्य-चेतना भी गतिमान् है। वे सौन्दर्य को कभी भी, किसी भी स्थिति में स्थिर देखने के अभयासी नहीं हैं। सौन्दर्य को स्वायत्त एवं स्वतन्त्र रूप में देखने में उनका मन रमता है। विद्यापति तिल-तिल अर्थात् क्षण-क्षण नूतन होने वाले रूप् को ही सौन्दर्य की संज्ञा प्रदान करते हैं-

सखि हे, कि पूछसि अनुभव मोय।

सेहो पिरीत अनुराग बखानइत, तिले तिले नूतन होय।।

जनम अवधि हम रूप निहारल, नयन न तिरपित भेल।

सेहो मधुर बोल श्रवनहि शूनल, श्रुति पथे परश न गेल।"20

विद्यापति द्वारा उद्भवित सौन्दर्य-सम्बन्धी उक्त धारण नितान्त यथाश्र्यानुकारी है। सौन्दर्य को क्षण-क्षण परिवर्तनशीलता की आवश्यकता होती है। जहाँ अतृप्ति है, वहीं अनुराग है और वहीं सौन्दर्य है। तृप्ति का ही दूसरा नाम उपेक्षा, उदासीनता परिणामत। घृणा और कुरूपता है। अस्तु, कवि के अनुसार सौन्दर्य-नियामक दो तत्त्व हैं-एक अभिनवता दूसरा अतृप्ति। जहाँ इन दोनों तत्त्वों की विद्यमानता होती है, वहाँ सौन्दर्य अनायास ही रूचिकर, परिणामतः सौन्दर्यवान्, प्रतीत होने लगता है। इस परिभाषा-निर्धारण में विद्यापति का गम्भीर चिन्तक या मनोवैज्ञानिक रूप देखा जा सकता है। सौन्दर्य-सम्बन्धी समस्त विचारण-अवधारणा का सम्यक् बोध कराने में उक्त पंक्तियों सर्वथा समर्थ हैं।

विद्यापति नित्यनवता के कवि हैं, उन्हें नवीनता का प्रतीक माना जा सकता है। इन्ही सब कारणों से विद्यापति को नवीनता का रूप ही नहीं, वरन् नूतन शब्द और उसके पर्याय बेहद प्रिय हैं। विद्यापति का सब कुछ अभिन्व है। उनके कृष्ण और राधा नव नागर और नवनागरी हैं।21 उनका पारस्परिक अनुराग भी नया है22 उनका भाव भी नया है।23 राधा की साड़ी भी नयी है।24 इसी से पे्ररित होकर कवि

कहता है कि नूतन रस ही संसार का सार तत्त्व है। अस्तु, कवि का भावविभोर होकर अभिनवता की यह अभ्यर्थना उपयुक्त ही है-

नव वृन्दावन नव नव तरूगन, नव नव विकसित फल।

नवल बसन्त नवल मलयानिल मातल नव अलि फूल।।

विहरई नवल किसोर।

कालिन्दि-पुलिन कुंजवन सोभन नव नव प्रेम-विभोर।।

नवल-रसाल-मुकुल मधुमातल नव कोकिल कुल गाय।

नव जुवति गन चित उमताअइ नव रस कानन धाव।।

नव जुवराज नवल नव नागरिक मिलए नव नव भाँति।

निति ऐसन नव नव खेलन विद्यापति मति माति।।25

कहा जा सकता है कि नवीन कामिनी का यह नवल नेह26 युग-युग तक सहृदयों के अन्तस् को नवल उजास से भरता रहेगा।

**(ई) सौन्दर्य की आनन्दस्वरूपता**

प्रशन है, व्यक्ति भोग क्यों करता है? अनायास ही उत्तर मिल जाता है-आनन्द के लिए। तो क्या प्रत्येक भोग में आनन्द निहित है? हाँ, यदि प्राणी यह समझे कि अमुक कार्य में उसे आनन्दानुभूति नहीं होगी तो उन कार्यों को वह क्यों करेगा? हाँ, यह जरूर हो सकता है कि प्राप्त आनन्द-सुख (आनन्द सुख से ऊपर की वस्तु है) हो, परिणामतः वह क्षणित होगा, ऐन्द्रिक होगा। सुन्दर आनन्द से भरा छलकता प्याला है जो आकाश से पृथ्वी पर उलट रहा है। जो है आनन्दभय है। यहाँ असुन्दर और निरानन्द कुछ नहीं। हम इसी आनन्द में जीते हैं, पलते हैं और समा जाते हैं।27 आनन्दवादी अभिनव गुप्त की भी यही मन्त्रणा है। उनकी स्थापना है कि सौन्दर्यानुभूति आत्मा की अन्तश्चेतना के साम्राज्य में ही सुसम्पन्न होती है और उसका परिणाम आनन्द-प्राप्ति है। जार्ज सांतायना भी सौन्दर्य को आनन्दात्मक मानते हैं। 'प्रसाद' की भी दृष्टि आनन्दमूलक ही थी। इस सम्बन्ध में उनका कहना है कि जड़ और चेतन दोनों अभिन्न हैं, आनन्द-प्रदायक हैं और इसलिए सुन्दर हैं।28

वस्तुतः, सुन्दरता आनन्द और विशुद्ध आनन्द के लिए ही होती हे, उसके मूल में और किसी प्रकार का प्रयोजन नहीं होता है। विद्यापति आनन्दवादी सौन्दर्यस्रष्टा महाकवि थे। उनके सौन्दर्य-सृजन का प्रथम और अंतिम उद्देश्य आनन्द-निष्पादन था। विद्यापति सुख के-आनन्द के कवि हैं, यह तथ्य पूर्णतः स्पष्ट है। अतएव, उनके काव्य में दुःख और पीड़ा का वर्णन कैसे मिल सकता है? विद्यापति की रूप की अपरूपता में, रूपभोग की ऐन्द्रिक सान्द्रता में तथा नित्यनवता में आनन्दानुभूति का ही प्रकाश विच्छुरित हुआ है।

सौन्दर्य की तरफ आकर्षित होना मानव-मन का प्रकृत स्वभाव है। इसी स्वभाव के कारण उसी सौन्दर्य के प्रति आसक्तता तथा पे्रमिल प्रकाढता दिनानुदिन घनीभूत होती जाती है। यहाँ तक कि एक दिन ऐसी भी स्थिति आ जाती है कि पे्रमी युग्म एक-दूसरे के मिलन के अभाव में बेचैन हो उठते हैं और यदि कुछ समय बिछुड़ने के बाद, जीवन की इस लम्बी यात्रा में यदि वे मिल भी जाते हैं तो उनके इस मिलनजनित आनन्द को आसानी से वर्णित नहीं किया जा सकता है। महाकवि विद्यापति ऐसे रूपों-घटकों, स्थितियों-परिस्थितियों के संयोजन-प्रस्तुति में अत्यन्त दक्ष हैं। वे अपनी आन्दात्मक प्रगाढ़ता का बोध, चिर दिन से बिछुडे हुए राधा-कृष्ण के मिलने से कराते हैं। पे्रमीयुग्म के इस विनीत मिलन में रससिन्धु ही उछल पड़ता है।29 सारे दुःख दूर हो जाते हैं, सारा शरीर रोमांचित हो उठता है। ऐसी मनोयमी स्थिति से प्राप्त आनन्द को शब्दों की सीमा में नहीं बाँधा जा सकता है।30 नायिका के लिए अपने आँगन में माधव की उपस्थिति ही आनन्द का महासागर बन जाती है-

कि कहब रे सखि आनन्द ओर।

चिरदिन माधव मन्दिरे मोर।

पाप सुधाकर यत दुख देल।

पिया-मुख दरशने दत सुख भेल।।31

इतना ही नहीं, वासन्तिक वैभव और उसकी सांगीतिक सुषमा का प्रत्येक स्पन्दन आनन्द का महोदधि ही उड़ेलता चलता है। ऋतुपतिराज वसन्त की उपस्थिति पर संगीतमिश्रित आनन्द का यह दृश्य द्रष्टव्य है-

मधुऋतु मधुकर पाँति। मधुर कुसुम मधु माति।।

मधुर वृन्दावन माझ। मधुर-मधुर रस जा।।

मधुर जुवति जन संग। मधुर-मधुर रस रंग।।

मधुर मृदंग रसाल। मधुर-मधुर करताल।।

मधुर नटन गाति भंग। मधुर नटनी नट संग।।

मधुर-मधुर रस गान। मधुर विद्यापति भान।।32

कवि की यह मधुर-महिमा आनन्द से पृथक, कुछ भी नहीं है। वस्तुतः, आनन्द का ऐसा अतिरिक-बहाव अन्यत्र दुर्लभ है।

## निष्कर्ष

विद्यापति जो कुछ कहते हैं, हृदय से कहते हैं। उसमें प्राणों की प्राणावत्त तथा उत्कट जिीविषा की निहित होती है। तटस्थ रहकर कुछ कहना जानते ही नहीं हैं। अतएव, उनका समस्त भाव-संसार प्रकृत प्रीति का विषय बन जाता है। चूंकि प्रेम का मूल पे्ररक सौन्दर्य है, उसका आश्रय है यौवन, तो वह प्रेम आनन्द की स्वर्गिक सुरभि का सम्प्रसारण क्योंय न करे? निष्कर्षतः, विद्यापति आनन्द और भोग के अनन्य कवि हैं। मैथिल कोकिल विद्यापति कवि थे, महाकवि थे, आशु कवि थे और सबके ऊपर सौन्दर्य के अप्रतिम एवं असाधारण स्रष्टा थे। उन्होंने सौन्दर्याभिव्यक्ति के लिए काव्य-रचना की है। कवि ने अत्यन्त समीप से सौन्दर्य को देख और परखा था। उन्हें सौन्दर्य की प्रत्येक गति व चाल का पूर्ण ज्ञान था। उनके काव्य में इन रूपों का-चाहे वह रूप सौन्दर्य हो, चाहे भाव सौन्दर्य, चाहे प्रकृति की बिखरी सुषमा हो और चाहे शिल्पगत अभिनवता हो-सहज उच्छलन हुआ है। विद्यापति के व्यक्तित्व एवं कृतित्व में उनके आचार्यत्व और कवित्व का समान रूप से सुष्ठु एवं आवर्जक समागम हुआ है।

## संदर्भ-सूची:-

1. महेन्द्रनाथ दुबे, गीत विद्यापति, पद-713
2. वही, पद-434
3. गीत विद्यापति, पद-446
4. रामवृक्ष बेनीपुरी, विद्यापति की पदावली, पद-2
5. गीत विद्यापति, पद-446
6. वही, पद-418
7. गीत विद्यापति, पद-336
8. वही, पद-416
9. गीत विद्यापति, पद-460
10. वही, पद-461
11. डॉ. शिवप्रसाद सिंह, विघापति, पृ. 164
12. विद्यापति की पदावली, पद-27
13. वही, पद-28
14. वही, पद-30
15. विद्यापति की पदावली, पद-32
16. वही, पद-164
17. वही, पद-165
18. डॉ. हरद्वारीलाल शर्मा, सुन्दरम्, पृ. 73
19. कामायनी: श्रद्धासर्ग, पृ. 60
20. गीत विद्यापति, पद-865
21. गीत विद्यापति, पद-673
22. वही, पद-677
23. वही, पद-652
24. वही पद-627
25. वही, पद-607
26. वही, पद-800
27. डॉ. हरद्वारीलाल शर्मा, सुन्दरम्, पृ. 58
28. कामायनी: आनन्द सर्ग, पृ. 294
29. गीता विद्यापति, पद-404
30. वही, पद- 405
31. वही, पद-407
32. वही, पद-847

**Corresponding Author**

**Bhawna Dahiya***

PGT in Hindi GGSSS Nuh Mewat

dmalik046@gmail.com